International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 01-08-2020; Accepted: 15-08-2020; Published: 02-09-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 5; 2020; Page No. 01-03

गोस्वामी तुलसीदास और रामराज्य की अवधारणा

कौशलेंद्र कुमार
पीएचडी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की जिस विरासत को हम धारण किए हुए हैं, वो किसी एक दिन में निर्मित नहीं हुई है। हजारों वर्षों से राज्यों ने, समाजों ने, व्यक्तियों ने अपने-अपने कालखण्डों में इस संस्कृति को कुछ-न-कुछ दिया, जिससे यह आज हमारे समक्ष उपस्थित है और जिसकी प्राचीनता एवं बहुलता के आगे पूरा विश्व भी नतमस्तक होता रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, अशोक, अकबर, गुरुनानक, विवेकानंद एवं गांधी जैसे महापुरुषों ने इस भारतीय संस्कृति को पोषित किया है। इतिहास के इस लम्बे काल-क्रम में कुछ एक ऐसा कालखण्ड आया जिसने भारतीय संस्कृति के निर्माण-प्रक्रिया को बृहत स्तर पर प्रभावित किया। इस कालखण्ड में भक्ति, प्रेम, एवं बुद्धितत्व का ऐसा अद्भुत समिश्रण प्रस्तुत हुआ कि भिन्न-भिन्न कारण से हताश पड़ें जनसमूह को जीवन के प्रति आकर्षण बढ़ता चला गया। भक्ति, प्रेम, ज्ञान एवं बंधुत्व का समिश्रण बृहत से वृहत्तर होता चला गया और आज इसे ही भक्ति-आंदोलन कहा जाता है। हिंदी जगत के साथ-साथ भारत के अन्य समाजों में भी भक्ति-आंदोलन का प्रभाव दिखने लगा। जहाँ तक हिन्दी जगत की बात है, इस आंदोलन से विपूल एवं स्तरीय साहित्य लिखा जाने लगा। इस कारण से हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल को स्वर्णकाल भी कहा गया। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिन कवियों के कारण भक्तिकाल को स्वर्ण-काल' कहा जाता है, तुलसीदास उनमें सर्वोपरि है। डॉ.रामबिलास शर्मा कहते हैं- "जिस युग में सबसे बड़ा कवि पैदा हुआ हो,वही स्वर्ण युग है। हमारे लिए तुलसीदास सबसे बड़े कवि है, जिस युग में वे पैदा हुए हैं,वही स्वर्णयुग है।"1 भक्ति से कविता बनाने की जो कवायद कबीर से प्रसूत हुई थी, तुलसीदास का काव्य उसकी सहज एवं उत्कृष्ट परिणति है। साहित्य का इतिहास का साक्षी है कि उन्हीं कवियों एवं उनकी रचनाओं को लोकप्रियता हासिल हो सकी है जो लोक के लिए तथा लोक की भाषा में लिखे गए जो संस्कृत के प्रकांड पंडित गोस्वामी तुलसीदास ने संस्कृत जिसे कबीर कूप का जल अर्थात जड़, स्थिर मानते हैं, में रचना बन कर अवधी एवं ब्रज जैसी लोक-बोलियों में मकाहाव्य की रचना की। यह समूची भक्ति काल की एक बड़ी विशेषता थी, युगांतकारी दृष्टि थी। आ. शुक्ल ने गोस्वामीजी की भक्ति को लोकसंग्रह से जोड़ा तथा इसे एक बड़ी विशेषता बताई। डॉ.रामबिलास शर्मा तुलसीदास के लोक संबंधी चिंतन पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं-" कुछ अन्य बातों में दूसरे कवि बड़े हो सकते हैं,किंतु जहां तक लोक-संस्कृति का प्रश्न है, जनता ने किसको महाकवि के रूप में स्वीकार किया है-वे तो तुलसीदास ही है"।2 आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी गोस्वामी जी के लोक-पक्ष को उजागर करते हुए उन्हें लोकनायक माना है। उन्होंने कहा कि तुलसीदास की प्रमाणिक पुस्तकों को देखें तो स्पष्ट होता है कि उन्होंने जिस समाज को देखा था वह बहुत ऊँचे आदर्शों पर नहीं चल रहा था। आ. द्विवेदी ने स्पष्ट कहा कि "समाज में धन की मर्यादा बढ़ रही थी दरिद्रता हीनता का लक्षण समझी जाती थी। पंडितों और ज्ञानियों का समाज के साथ कोई भी संपर्क नही था। सारा देश विश्रृंखल, परस्पर विच्छिन, आर्दशहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी,जो इन परस्पर विच्छिन और दूर-विभ्रष्ट टूकडों में योग-सूत्र स्थापित करें तुलसीदास का आविर्भाव ऐसे समय में ही हुआ।"3 तुलसीदास की समकालीन परिस्थितियां ऐसी थी कि जनता में निरुत्साह की भावना बढ़ती जा रही थी, धर्म-नीति का आचरण छीन होते जा रहा था। धर्म, आस्था, मत के मूल तत्वों से लोग दूर हो रहे थे और बाहरी आडंबरों के वशीभूत होकर आपस में लड़-झगड़ रहे थे। तुलसी दास ने राम के चरित के रूप में न सिर्फ हताश-निराश जाति को पौरूष का पाठ पढ़ाया बल्कि भिन्न मतों के लोगों के मध्य समन्वय भी किया। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हीं सब कारणों से तुलसीदास को लोकनायक कहा है। वो कहते हैं- "भारतवर्ष का लोक-नायक वहीं हो सकता है, जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो भारतीय समाज में नाना भाँति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां, साधनाएं, जातियों, आचार-विचार और पद्वतियां प्रचलित है।"4 यह सत्य है कि तुलसीदास ने समन्वय की विराट चेष्टा की है। ज्ञान का भक्ति से, गृहस्थ का वैराग्य से, शैव का वैष्णव से, शास्त्र का लोक से, प्रेम का मर्यादा से, राज्य का जनता से समन्वय सिर्फ तुलसीदास ही कर सकते हैं। यह समन्वय राम के धीरोदात चरित्र के माध्यम से ही संभव हो पाया। राम के चरित की खूबी भी यही रही है कि- "राम! तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाए यह सहज संभाव्य है।"5 तुलसीदास भक्त, संत, कवि थे। इन तीन विशेषताओं के कारण उनमें भक्त का सरस हृदय, संत का वैराग्य और एक कवि की संवेदनशील चेतना निहित थी। उन्होंने राम का चरित काव्य लिखा जो हिंदी साहित्य का अमरकाव्य बन गया। राम पर लिखने के कारणों के बारे में रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि "तुलसी राम का चरित्र चुनते हैं अपने लिए जो मर्यादा पुरूषोतम हैं और हर तरह से आदर्श के प्रतिरूप हैं, आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श मित्र, आदर्श भ्राता, सबसे अधिक आदर्श पति और आदर्श शासक।" 6 अतः यह समझा जा सकता है कि जिस तरह के समाज का निर्माण तुलसीदास चाह रहे थे वह सिर्फ रामराज्य की अवधारणा से ही सिद्ध हो सकता था।

युगों-युगों से भारतीय जनमानस की आस्था के केन्द्र में राम रहे हैं। ये आस्था किसी चमत्कार की कहानी सुनकर पैदा नहीं हुई बल्कि राम के लोक-व्यवहार को समझने से प्रसूत हुई। मन-कर्म-वचन से राम ने मर्यादा व धर्म की ऐसी मिसाल पेश की वो और उनका सम्पूर्ण जीवन चरित्र कालजयी हो गए। एक मानव b 12का अपने अदम्य साहस, धैर्य व कर्त्तव्य के प्रति संपूर्ण निष्ठा के कारण पुरुष से पुरषोत्तम बनने की कहानी, राम का जीवन-चरित है। जीवन के भिन्न-भिन्न कालखन्डो में जिन कर्त्तव्यों का निर्वहन राम ने जिस प्रकार किया वो आगे आने वाली पीढ़ी के लिए उदाहरण बन गए। पुत्र के रूप में, मित्र के रूप में, पति के रूप में, राजा के रूप में राम के द्वारा किए गए कार्य-व्यवहार धर्म की कसौटी बनते चले गए। सार्वजनिक जीवन में प्रवेश

कर राम जब राजा बनते हैं तब प्रजा खुश भी थी और इस खुशी में बड़ी-बड़ी अपेक्षाएं भी निहित थी। राजा राम एक सफल राजा के रूप में अपना स्थान बनाते हैं आज भी हम जब एक श्रेष्ठ राजकीय व्यवस्था की बात करते हैं तब हमारे समक्ष रामराज्य की ही अवधारणा होती है। आज की पीढ़ी को रामराज्य की वास्तविक तस्वीर दिखलानी जरूरी है, तभी वो न्यायपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था व समानता की भावना से संचालित एक बेहतर समाज की जरूरत को समझ पाऐंगे। प्रेम, भाईचारा, बंधुत्व, न्याय, समानता आदि जैसे वांछनीय गुणों से युक्त राम-राज्य की छवि गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तरकांड में दिखलाई है। यह छवि ऐसी है कि मनुष्य क्या कोई भी प्राणी ऐसे ही राज्य में रहना अपना सौभाग्य समझेगा।

गोस्वामी तुलसीदास के रामराज्य में राजा की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण है। प्रजा के सुख-दु:ख व अन्य सभी प्रकार की परिस्थितियों के लिए वह ही जवाबदेह होता है। इसलिए उसका कोई भी निर्णय व्यक्तिगत आकांक्षा से प्रेरित नहीं हो सकता, बल्कि उस निर्णय में समस्त समाज, प्रजा का हित ही सर्वोपरि होता है। जो शासक ऐसा नहीं करते हैं, उसकी प्रजा दुखी रहती है और ऐसे राजा के लिए तुलसीदास लिखते हैं - "जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। ते नृप अवसि नरक अधिकारी।।" तो यहाँ अर्थ स्पष्ट है कि रामराज्य की अवधारणा में राजा की कसौटी प्रजा ही है। प्रजा के दुख को कम करने वाला राजा ही राज कहलाने योग्य है अन्यथा वह नरक का अधिकारी होता है। तुलसीदास के द्वारा प्रस्तुत रामराज्य की अवधारणा मध्यकालीन भारतीय समाज की आकांक्षाओं की सहज परिणति है। लोकतंत्र या प्रजातंत्र की तरह आधुनिक दर्शन की शब्दावलियाँ तुलसीदास उपयोग नहीं करते किन्तु इस सत्य से बिल्कुल भी इंकार नहीं किया जा सकता कि आदर्श शासन-व्यवस्था अर्थात् रामराज्य में प्रजा ही सर्वप्रमुख थी। ''परहित सरिस धर्म नहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई'' कहने वाला कवि प्रजा को पीड़ा पहुंचाने वाले राजा को भला आदर्श कैसे मान सकता है। वह तो ऐसे राजा को आदर्श मानेगा जिसके राज्य में कोई दुखी न हो, किसी को पीड़ा न हो। उत्तरकांड में तुलसीदास रामराज्य के बारे में लिखते हैं -

''नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छणहीना।।''

रामराज्य में कोई दरिद्र नहीं था हमें यहाँ समझना हेगा कि तुलसीदास ने अन्य जगहों पर भी दरिद्रता को अभिषाप माना है - ''नहिं दरिद्र सम दु:ख जग माही''। रामराज्य में लोग इस अभिषाप से ,इस परम संताप से मुक्त थे। कोई न तो दु:खी था और न किसी को दुख देता था। कोई भी ज्ञानहीन नहीं था और न कोई भी शुभ लक्षणों से हीन नही था। यहाँ देखा जा सकता है कि रामराज्य में दरिद्रता, दुख, ज्ञानहीनता, लक्षणहीनता का कोई भी स्थान नहीं था।

रामराज्य में रोग-व्याधि भी नहीं थे। तुलसीदास लिखते हैं - "अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब बिरूज सरीरा।" यह एक ऐसी शासकीय व्यवस्था थी जहाँ किसी की भी अकालमृत्यु नहीं होती थी। किसी भी रोग व्याधि से किसी को भी पीड़ा नहीं होती थी। सभी लोग निरोग, स्वस्थ थे। सब का शरीर सुन्दर व रोग रहित था। यहाँ अलपमृत्यु शब्द पर थोड़ा विचार किया जाना चाहिए। तुलसीदास का समाज एक सामंती परिवेश का समाज था। यहाँ शासक आत्मकेन्द्रित होत थे तथा प्रजा से सिर्फ भौतिक संसाधनों की प्राप्ति तक ही संबंध रखते थे। प्रजा के दुख से, पीड़ा से, रोग-बीमारी से कोई मतलब नहीं था। तुलसीदास के समाज में किसी महामारी से लोगों की अकालमृत्यु होती थी, परन्तु राजा या शासक इसके प्रति अपनी जिम्मेदारी को नहीं प्रदर्शित करता था। तुलसीदास ने इन्हीं सब परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कहा eकि राम के जैसे राजा होने पर प्रजा अकालमृत्यु को प्राप्त नहीं करती थी। आज भी एक संवेदनशील शासक राज्य में किसी भी प्रकार की महामारी फैलने पर अपने समस्त संसाधनों के साथ प्रजा की रक्षा इस महामारी से करता है। राज-व्यवस्था की यह सीख हमें रामराज्य की अवधारणा से ही मिलती है।

रामराज्य में सर्वत्र प्रेम, बंधुत्व व भाईचारा का ही बोल बाला था। तुलसीदास लिखते हैं -

''सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।''

अर्थात् सभी लोग एक दूसरे से प्रेम करते थे, प्रीति रखते थे। किसी के भी मन में अन्य किसी के लिए कटुता नहीं था। सभी लोग अपने अपने निर्धारित धर्म के अनुसार कर्मरत थे। मर्यादा का उल्लंघन कोई भी नहीं करता था। नीति-नियम से समाज चलता था तथा सभी स्वेच्छा से इन नियमों का पालन करते थे। रामराज्य की प्रमुख विशेषताओं से एक विशेषता यह भी थी कि किसी को दण्ड देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। सभी जन अपने-अपने कत्तव्यों, दायित्वों का निर्वहण बड़ी सावधानी से करते थे, उनसे कोई चूक नहीं होती थी और इसलिए किसी को दण्ड भी देने का आवश्यकता नहीं थी। इसी पर तुलसीदास अपने काव्य-विवेक से थोड़ा हास्य रस के साथ कहते हैं -

''दंड जतिन्ह, कर भेद जहं नर्तक नृत्य समाज''

अर्थात् समाज में कहीं भी दण्ड जैसी व्यवस्था नहीं थी। हाँ, यह दिखता था तो सिर्फ सन्यासियों के हाथों में। यह विचारने वाली बात है कि सभी लोग मर्यादा की परिधि से इस तरह आबद्ध थे कि चूंक हो ही नहीं सकती थी और इस कारण दण्ड, सजा जैसा कुछ था भी नहीं। यहाँ रामराज्य के संबंध में तुलसीदास ने 'भेद' शब्द का भी उपयोग किया है। संकेतों में गोस्वामीजी ने बड़ी गूढ़ बात कह दी है। हम जानते हैं कि वह सामाजिक व्यवस्था सबसे अच्छी मानी जाती है जो समतासूलक होती है। जिसमें भेद-भाव जैसे अवांछनीय तत्त्वों का समावेश नहीं होता है। तुलसीदास ने रामराज्य में इसी समतामूलक समाज के होने की बात कही है। रामराज्य में किसी से किसी का भेद नहीं था। सबके मन मिले हुए हैं, सब एक समान हैं। भेद शब्द सिर्फ नृत्य के भेदों के रूप में ही सुनाई पड़ता था। सब अपने-अपने कामों में संलग्न थे तथा एक-दूसरे के कार्यों को महत्व देते थे। किसी से किसी का बैर -भाव नहीं था। गौरतलब है कि जि किसी भी समाज में भेद नहीं होगा, वह समाज स्वस्थ व विकासोन्मुखी होगा। रामराज्य का समाज भी ऐसा ही था। काई किसी का शत्रु नहीं था और इसी कारण किसी को भी जीतने की आवश्यकता नहीं थी। तुलसीदास कहते हैं -

''जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचन्द्र के राज''

अर्थात् क्योंकि कोई किसी का शत्रु नहीं था और इस कारण से किसी को जीतने की आवश्यकता भी नहीं रह गई थी, 'जीतने' शब्द का प्रयोग सिर्फ मन को जीतने के संबंध में होता था। रामराज्य में शत्रुता, बैर-भाव जैसे दूषित मनोविकार का कोई स्थान नहीं था। ऐसा नहीं है कि सिर्फ मनुष्यों के हृदय ही इन दूषित विचारों से मुक्त थे बल्कि रामराज्य में तो पशु-पक्षी भी प्रेम, प्रीति व अहिंसा से युक्त थे। रामराज्य की एक अलौकिक विशेषता यह रही है कि इस समय में हाथी और सिंह जैसे परस्पर परम शत्रु भी प्रेम भाव से

रहते थे। प्रेम का ऐसा वातावरण आच्छादित था कि शिकार व शिकारी भी परस्पर शत्रु-भाव को छोड़ मित्रवत् एकसाथ रहते थे। अत: 'भेद' तो कहीं था ही नहीं।

हम जानते हैं कि राम जो स्वयं मर्यादा को सर्वोपरि मानते थे, उनके राज्य में मर्यादा की प्राथमिकता क्या रही होगी। चर-अचर, सजीव-निर्जीव सभी अपनी-अपनी मर्यादा से बंधे थे और कभी भी इसका उल्लंघन नहीं करते थे। राम ने उस समाज में एक पत्नीव्रत रहने का संकल्प लिया था जिसमें बहुतपत्नी प्रथा एक आम-प्रथा थी। राम ने स्वयं के आचार-विचार व व्यवहार से दांपत्य जीवन में मर्यादा की एक रेखा खींच दी जिसे पार करना राज घराने के लोग के साथ-साथ आम प्रजा के लिए भी अनैतिक था। रामराज्य में दांपत्य जीवन पर तुलसीदास लिखते हैं -

''एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।''

अर्थात् सभी पुरुष एक नारी व्रत का पालन करते हुए एक ही पत्नी रखते थे तथा नारियां भी मन-वचन-कर्म से पति का केवल हित हीं चाहती थी। एक सुखी वैवाहिक जीवन का संकल्प लेता था तो दूसरा इस संकल्प की सिद्धि हेतु समर्पित थी। पुरुष व स्त्री अपनी-अपनी मर्यादा पर अड़िग थे। रामराज्य में केवल मनुष्य ही अपनी मर्यादा से नहीं आबद्ध थे बल्कि सागर, वन, खन्न आदि भी अपने मर्यादा को पूरा करने के प्रति प्रतबद्ध थे। सागर के बारे में तुलसीदास लिखते हैं -

''सागर निज मरजाद रहहीं। डाराहिं रत्न तटन् हि नर लहहीं।''

अर्थात् सागर भी अपनी मर्यादा में ही रहता है। वह स्वयं ही रत्न आदि तट पर ले जाता है। रामराज्य में सभी वृक्ष फल फूल आदि से आच्छादित रहते थे। नदियों में सर्वत्र स्वच्छ जल कल-कल करता प्रवाहित होता रहता था। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध आदि सभी चरित्रवान व सुंदर थे। धर्म, नीति, अनुशासन के पालन से सभी भौतिक संसाधनों का बाहुल्य था रामराज्य में। किसी को भी किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं था। प्रजा को न तो दैहिक, न दैविक और न भौतिक ही दु:ख था -

''देहिक, दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यपा।।''

अत: जब राम के जैसा चरित्रवान धैर्यवान, प्रजा-हितैषी, नीति व धर्म पर अटूट आस्था रखने वाला कोई राजा बनता है तब रामराज्य जैसी कोई श्रेष्ठ व्यवस्था स्थापित होती है। आज जब हिंसा, वैमनस्य, जातीय-धार्मिक उन्माद, पक्षपात, अनीति, भ्रष्टाचार, आदि अवांछनीय तत्वों की प्रधानता हमारे समाज में बढ़ती चली जा रही है, रामराज्य की अवधारणा को समझना-समझाना अत्यंत आवश्यक है। आगे आने वाली पीढियों को सुचिता, न्याय, धर्म व नीति का पाठ रामराज्य को समझने से ही प्राप्त होगी।

संदर्भ सूची

1. डॉ. रामविलास शर्मा, मेरे साक्षात्कार,किताबघर प्रकाशन,नई दिल्ली, तृतीय संस्करण
2. डॉ. रामविलास शर्मा, मेरे साक्षात्कार,किताबघर प्रकाशन,नई दिल्ली,तृतीय संस्करण
3. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ संख्या 98
4. हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ संख्या 131
5. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त,
6. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी पृष्ठ 49